❑ राधामोहन उपाध्याय

# राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएँ व समाधान

राष्ट्र-जीवन में सबसे अल्पकालीन स्थान है प्रशासन का। सरकारें आती-जाती हैं, प्रशासक बदलते रहते हैं पर राष्ट्र सतत अस्तित्व में रहता है। सरकार की अपेक्षा अधिक दीर्घजीवी है भाषा, भाषा की अपेक्षा बहु काल व्यापी है धर्म और धर्म से भी अधिक आयाम है संस्कृति का। वस्तुत: संस्कृति ही राष्ट्र-वृक्ष का मूल काष्ठ है, बाकी सब छिलके हैं। छिलकों के हटने पर भी वृक्ष गिरता नहीं है। राष्ट्र की राष्ट्रीयता को अच्छिन्न कर दो, वह धराशायी हो जायेगा। राष्ट्रीयता के साथ संस्कृति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। संस्कृति के विनष्ट होने पर राष्ट्रवृक्ष खड़ा नहीं रह सकता।

विश्व में भारत ही एकमात्र देश है जिसकी राष्ट्रीयता ईसा पूर्व दसवीं सहस्राब्दि से अव्याहत चली आ रही है। इसका एक और भी सौभाग्य है जो किसी भी देश को प्राप्त नहीं है और वह है धर्म एवं भाषा। वही सनातन धर्म समय-समय पर विभिन्न धर्माचार्यों द्वारा देश कालानुरूप संशोधन-परिवर्द्धनों द्वारा अपने को सुपुष्ट करता हुआ अद्यावधि हमें अपना अक्षय पीयूष पान कराता चला आ रहा है। साथ ही यहां वैदिक भाषा संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश की घाटियों से प्रवाहित होती हुई आज आधुनिक भारतीय भाषाओं के माध्यम से अपना स्तन्य पान करा रही है। इसे वैदिक वंश की भी संज्ञा दे सकते हैं।

**भाषा और राष्ट्र**

यह बात सच है कि भाषा— विशेष राष्ट्र जीवन में अल्पकालीन है लेकिन भाषा राष्ट्रीय जीवन में रक्तवाहिनी या प्राणवाहिनी धमनी के समान महत्वपूर्ण है। केवल नदी, नद, पर्वत, उपत्यकाओं आदि से ही राष्ट्र की संरचना नहीं होती। इसके लिए संगठित जनशक्ति का एवं उसकी संस्कृति का होना भी आवश्यक है। भाषा ही जन संगठन विधात्री है और वही संस्कृति की जननी है। इसी से राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था सुस्थापित होती है। वाणी अपना परिचय खुद देती हुई वेद में कह रही है :-

**अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां**
**चिकितुषी प्रथमा याज्ञियानाम्।**
**तां मा देवा व्यदधु: पुरुत्रा**
**भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।**

अर्थात् मैं ही राष्ट्र की वह शक्ति हूं जो राष्ट्र को धन प्रदान करती है, जो यज्ञों के भावों को एवं देश को जानने वाली है। मैं बहुत स्थिर, सर्वव्यापक और सबको प्रेरणा देने वाली हूं, देवता लोग मुझे धारण करते हैं।

प्रत्येक भाषा की अपनी निजी धड़कन होती है और हर धड़कन में उसकी संस्कृति की झंकृति सुनाई पड़ती है। जो झंकृति 'ऋषि', 'मुनि' और 'संत' शब्दों में है, वह 'फकीर', 'पीर', 'हरमिट' या 'सेज' में नहीं है। अपनी भाषा माता के समान होती है। इसमें अपनी मिट्टी की गन्ध होती है, अपनी सरिताओं का कलनाद होता है और अपने पूर्वजों के साथ तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता होती है। अंग्रेजी में इंग्लैंड की मिट्टी एवं संस्कृति गूंजती है जबकि हिन्दी में भारत की। आज दिनोंदिन क्षीयमाण देशभक्ति को संजीवनी देने के लिए केवल मातृभाषाओं के माध्यम से शिक्षा की अनिवार्यता होनी चाहिए।

**हिन्दी और हिन्दुस्तान**

आज हिन्दी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा है। सरकारी भाषा न होने पर भी राष्ट्र के बहुजन की भाषा होने के नाते और एक मात्र सम्पर्क भाषा होने के नाते हिन्दी राष्ट्र भाषा के पद पर सहस्रों वर्ष पूर्व आसीन हो गई थी यद्यपि इसे सरकारी स्वीकृति न मिली थी।

मुगलिया शासन की स्थापना के समय भी हिन्दी राष्ट्र की, बहुजन की भाषा थी। मुगल बादशाह एवं उनके कारिन्दे फारसी के अतिरिक्त किसी भारतीय भाषा को महत्व यदि देते थे तो वह थी हिन्दी। खुसरो इसके गवाह हैं। टूटी-फूटी हिन्दी, फारसी मिश्रित हिन्दी ही कालान्तर में उर्दू बनकर उद्‌भूत हुई। यदि गिलक्राइस्ट ने फोर्टविलियम कालेज में भाषा (हिन्दी) और उर्दू का अलग-अलग विभाग न खोला होता तो शायद उर्दू हिन्दी की मात्र एक शैली होकर रह जाती।

मुगल शासन के दौरान अरबी-फारसी का, विशेष कर फारसी का प्रचार सरकार की ओर से किया गया लेकिन वह सरकारी फरमानों एवं



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कचहरियों तक ही सिमट कर रह गया। हिन्दी ही समूचे राष्ट्र की सम्पर्क भाषा थी, राष्ट्रभाषा थी। कुंभ मेलों में जहां देश के हर कोने से तीर्थयात्री आते हैं, हिन्दी का ही व्यवहार करते थे और आज भी करते हैं। साधुओं के अखाड़े भी समग्र भारत के संगम स्थल होते हैं। वहां भी हिन्दी का ही व्यवहार होता चला आ रहा है। चारों धाम की तीर्थ यात्रा के समय हिन्दी ही सम्पर्क सूत्र का काम करती है।

हिन्दी का प्रचार हिन्दीतर प्रदेशों में काफी अधिक रहा है। गुलामी के समय आसेतु हिमालय की प्रिय भाषा हिन्दी ही थी। इसका ज्वलन्त प्रमाण यह है कि कोई भी विदेशी जो हिन्दुस्तान में आया, हिन्दी ही पढ़ना आवश्यक समझा। डच यात्री जान केटेलर ने सन् 1685 ई0 में हिन्दी का प्रथम व्याकरण लिखा। वह सूरत (गुजरात) में रहता था और वहां व्यापारियों की भाषा का उसने अध्ययन किया जिसमें गुजराती मिश्रित हिन्दी थी। उसने जो व्याकरण लिखा, उसमें हिन्दी की ही प्रधानता थी।

इसी प्रकार मद्रास में ईसाई पादरी बेन्जामिन शुल्गे ने सन् 1719 ई0 में हिन्दी का व्याकरण 'ग्रैमेटिका हिन्दोस्तानिका' लिखा। इस पादरी ने मद्रास में रहते हुए भी यह अनुभव किया कि हिन्दुस्तान की जनता के साथ विचार-विनिमय के लिए एक मात्र यदि कोई भाषा सर्वाधिक समर्थ है तो वह है हिन्दी।

हिन्दी सारे हिन्दुस्तान में इतनी धड़ल्ले से बोली जाती थी कि ईसाई धर्म प्रचारकों ने सर्वप्रथम हिन्दी को ही अपनाया। और अंग्रेज अधिकारी एडवर्ड पिनकाट ने इंग्लैंड से यह राजाज्ञा निकलवा दी कि भारत में वही अंग्रेज अधिकारी नियुक्ति पा सकता है जो हिन्दी जानता हो।

स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने धर्म का प्रचार संस्कृत में कर रहे थे लेकिन केशव चन्द्र सेन के आग्रह पर आपने हिन्दी में अपना प्रचार कार्य शुरू किया। हिन्दी का आश्रय पाकर ही आर्य समाज अल्पकाल में इतना प्रचार-प्रसार पा सका। गोस्वामी तुलसी दास संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे लेकिन उन्हें अपने पाण्डित्य प्रदर्शन की ललक न थी। वे राम कथा को जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे। इसी से उन्होंने हिन्दी का सहारा लिया। यही बात रही सूफी सन्तों के साथ। वे भी अपने को जन-जन तक पहुंचाने के लिए हिन्दी का सहारा लेते रहे।

अंग्रेजी शासन के समय अंग्रेज बुद्धिजीवियों की भाषा बन गई। ये बुद्धिजीवी दो प्रकार के थे :-

1- एक वे थे जो अंग्रेजी पढ़कर ऊंचा ओहदा पाना चाहते थे, अंग्रेजों की प्रीति एवं अपने लोगों में सम्मान पाना चाहते थे। इनका प्रयास आत्मनेपदी था।

2- दूसरे वे थे जो अंग्रेजी पढ़कर अंग्रेजों का जवाब देना चाहते थे और आजादी की लड़ाई को जानदार बनाना चाहते थे। सुभाष चन्द्र बोस, सावरकर आदि इसी कोटि के थे। यह संयोग की या सौभाग्य की बात हुई कि कुछ आत्मनेपदी नेता भी काल प्रवाह में परस्मैपदी बन गये।

अस्तु, इन नेताओं ने बहुत शीघ्र यह अनुभव कर लिया कि अंग्रेजी से हम स्वतंत्रता संग्राम में आम जनता की भागीदारी नहीं पा सकते। बुद्धिजीवियों की भाषा हवाई भाषा है, धरती की भाषा हिन्दी भाषा ही है। भारत की जनता को जगाने के लिए गांधीजी ने हिन्दी का सहारा लिया। विनोबा भावे भारत की कई भाषाओं के पण्डित थे लेकिन उन्होंने भी सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी को ही अपनाया।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व देश के सभी मनीषी एक स्वर में बोल रहे थे कि हिन्दी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा बनने की क्षमता रखती है। राजा राम मोहन राय का कहना था- "हिन्दी ही ऐसी भाषा नजर आती है जिसे राष्ट्रभाषा के पद पर बिठाने का प्रस्ताव रखा जा सकता है।"

केशव चन्द्र सेन ने कहा, "अभी जितनी भाषाएं भारत में प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी ही सर्वत्र प्रचलित भाषा है। इसी हिन्दी को यदि भारतवर्ष की एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय, तो यह (एकता) सहज ही में सम्पन्न हो सकती है।"

बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय कहते हैं, "बिना हिन्दी की शिक्षा दिये, अंग्रेजी के द्वारा यहां का कोई कार्य नहीं चलेगा। भारत के अधिकांश लोग अंग्रेजी और बंगला न तो बोलते हैं और न समझते ही हैं। हिन्दी के द्वारा ही भारत के विभिन्न भागों के मध्य ऐक्य स्थापित हो सकेगा।" बंग दर्शन - खण्ड - 5 वर्ष, 1884

रवीन्द्र नाथ टैगोर के कथानानुसार, "अगर हम हर भारतीय के नैसर्गिक अधिकारों के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं तो हमें उस भाषा को (राष्ट्रभाषा के रूप में) स्वीकार करना चाहिए, जो देश के सबसे बड़े भाग में बोली जाती है और जिसके स्वीकार करने की सिफारिश महात्माजी ने हमलोगों से की है- अर्थात् हिन्दी" कलकत्ता हिन्दी क्लब बुलेटिन सित., 1938।

सुभाष चन्द्र बोस ने कहा, "मैंने सर्वदा ही यह अनुभव किया है कि भारत में एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक है और वह हिन्दी ही हो सकती है।" एडवांस जुलाई, 1938।

इसी प्रकार महाराष्ट्र में लक्ष्मण नारायण गर्दे, बाबू राम विष्णु पराडकर, माधव राव सप्रे ने हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया। पंजाब में लाला लाजपत राय, लाला हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द आदि हिन्दी की सेवा कर रहे थे। राजस्थान और गुजरात तो हिन्दी प्रचारकों का गढ़ ही रहा है। तात्पर्य यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में भाषा को लेकर कोई विवाद न था। हवा हिन्दी के पक्ष में बह रही थी। सभी का ध्यान राष्ट्रहित पर टिका हुआ था। राष्ट्र के लिए उत्सर्ग का भाव था। आदर्श नागरिकता थी। देशवासियों का मनोबल ऊंचा था।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महात्मा गांधी का योगदान अमूल्य है। आपने हिन्दीतर प्रदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1936 ई0 में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना की थी। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' ने ही सन् 1975 में नागपुर में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व इन संस्थाओं द्वारा हिन्दी का काफी जोरदार प्रचार होता रहा।

गांधी जी ने 1918 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व किया था। आपने अध्यक्ष पद से सुझाव दिया था कि राष्ट्रीय



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकता स्थापना के लिए विभिन्न प्रान्तों में हिन्दी प्रचार समिति गठित की जाय। आपके ही सत्प्रयास से 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना हो गई जो अब तक काम कर रही है। इसका प्रमुख कार्यालय मद्रास में है।

गांधी जी हिन्दी को परिनिष्ठित या मानक हिन्दी से अलग कर उर्दू मिश्रित हिन्दी या हिन्दुस्तानी बनाना चाहते थे। सन् 1933 ई0 में गांधी जी की ही अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का इन्दौर अधिवेशन हुआ था। इसमें गांधी जी ने ही प्रस्ताव रखवाया था कि हिन्दी में संस्कृत के शब्दों के बदले उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया जाय लेकिन दुर्धर्ष वक्ता पं0 रामबालक शास्त्री के तगड़े विरोध के फलस्वरूप वह प्रस्ताव वापस ले लिया गया।

**स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी**

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अब वह समय आ गया जब आजादी की लड़ाई के समय किये गये भाषा सम्बन्धी वायदों को पूरा करना था। हिन्दी के प्रबल समर्थकों में अब बच गये थे महात्मा गांधी के अलावा सेठ गोविन्द दास एवं टण्डनजी। दुर्भाग्य से गांधी जी का सम्बल भी शीघ्र ही छूट गया। अगस्त 1948 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दिल्ली द्वारा भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों का सम्मेलन बुलाया गया और अध्यक्ष थे सेठ गोविन्द दास। इस सम्मेलन में सर्वसम्मति से हिन्दी को राष्ट्रभाषा एवं नागरी को लिपि के रूप में स्वीकारा गया।

9 अगस्त, 1948 को कांग्रेस पार्टी की एक बैठक हुई थी। इसमें हिन्दी के साथ अंग्रेजी को भी 15 वर्षों तक चलाने के विषय पर गरमागरम बहस हुई थी। इसमें भाग लेने वालों में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, श्री पट्टाभिसीतारमैया, पं. जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, पं. गोविन्द बल्लभ पंत, सुचेता कृपलानी आदि थे। इसी साल 2 सितम्बर से 14 सितम्बर तक गरमागरम बहस के बाद 14 सितम्बर को हिन्दी राजभाषा विधेयक संविधान सभा में पास हो गया। 15 वर्षों तक अंग्रेजी में भी काम करने की छूट थी।

**हिन्दी पर भीतरघात**

हिन्दी आज हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा होती, विवाद का सारा मुद्दा ही समाप्त हो गया होता यदि पण्डित नेहरू हिन्दी के प्रति कठोर न होते। पण्डित नेहरू का संस्कार पाश्चात्य था। उनकी दृष्टि में हिन्दी दरिद्र भाषा थी। इसी बात को लेकर एक बार वे डॉ. रघुवीर से उलझ गये थे। डॉ. रघुवीर हिन्दी का शब्दकोश बना रहे थे। नेहरूजी ने उपेक्षा भाव से कहा था— 'इस कंगाल भाषा को कुबेर नहीं बनाया जा सकता।' डॉ. रघुवीर को पं. नेहरू के ज्ञान पर हंसी आ गयी। नेहरू जी झल्ला उठे, बोले— बताओ, हिन्दी में कार्य के लिए कितने शब्द है।' डॉ. रघुवीर कहा- "अनेक हैं। कार्य 'कृ' धातु से बना है। इसी से कृति, करण, कारण कर्म, कारक, करणीय, कर्त्तव्य, कर्त्ता, क्रिया, कृत, कुर्वाण आदि अनेक शब्दों का निर्माण किया जा सकता है।" इसी प्रकार नेहरू जी ने जब 'ला' के अर्थ में हिन्दी का शब्द पूछा तब डॉ. रघुवीर ने बताया- "विधि, संविधान, विधान, विधायक, विधायिका, विधेयक, विधाता, विधेय, विधिज्ञ आदि।"

तात्पर्य यह है कि पं. नेहरू की इसी मानसिकता ने हिन्दी की नैया डुबो दी। हिन्दी की गति रोकने के लिए ही प्रारंभ में हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का झमेला खड़ा किया गया। यह तो टण्डन जी जैसे तपस्वी का कड़ा विरोध था कि हिन्दी और नागरी को संवैधानिक मान्यता मिली। आपने उर्दू का विरोध करते हुए कहा था- "उर्दू को उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय भाषा घोषित करना साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देना है।" 18 फरवरी, 1953 अलीगढ़। "जो लोग उर्दू को प्रादेशिक भाषा बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे इस देश की संस्कृति के शत्रु हैं।" 15 मार्च, 1953, नेशनल क्लब, नई दिल्ली

"उर्दू को अलग भाषा के रूप में या क्षेत्रीय भाषा के रूप में चालू रखने का कार्य अराष्ट्रीय है।" 19 जुलाई, 1953 सिरसा, इलाहाबाद।

पं. नेहरू को यदि हिन्दी से एलर्जी न होती तो 15 वर्षों का टेक न लगा होता। उस समय समग्र भारत में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल थी। लोग इसे स्वीकार लिए होते। पं. नेहरू का 1950 तक वह व्यक्तित्व था जिसके विरोध में कहीं से स्वर न उठता। स्मरण आता है टर्की का कमाल पाशा। उसने अपने मंत्रियों एवं कर्मचारियों से पूछा- "देश में तुर्की को राजभाषा बनाने में कितना समय लग सकता है?" कर्मचारियों ने बताया कि तुर्की को राजभाषा के पद पर पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करने में दस वर्ष लग सकते हैं। कमाल पाशा ने कहा- "कल सबेरे दस बजे तक यह दस वर्ष बीत जाना चाहिए" और वही हुआ। दूसरे दिन से ही तुर्की टर्की की राजभाषा बन गई। यही काम पण्डित नेहरू भी कर सकते थे लेकिन वे जिस बात को नहीं चाहते थे, उसे उलझाते जाते थे।

1962 से हिन्दी को अंग्रेजी की गद्दी पर बैठ जाना था। नहीं हुआ। दक्षिण में प्रबल विरोध हुआ, आत्मदाह हुए। फलतः 1963 में पुनः संविधान में संशोधन करना पड़ा। हिन्दी के साथ अंग्रेजी का व्यवहार तब तक के लिए मान लिया गया जब तक भारत के सभी राज्य सहमत न हो जाएं।

यह बात समझ में नहीं आती कि जब एक वोट के बहुमत से भी कोई पार्टी पूरे देश पर शासन कर सकती है तब बहुमत की भाषा हिन्दी को एकमात्र प्रशासकीय भाषा होने से क्यों रोका जा रहा है?

**हिन्दी बनाम अंग्रेजी**

आज लड़ाई हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच नहीं है, लड़ाई है हिन्दी बनाम अंग्रेजी की। सरकारी नीति के कारण ही प्राथमिक विद्यालयों से ही अंग्रेजी की पढ़ाई शुरू की जा रही है। अंग्रेजी माध्यम के स्कूल 'रक्तबीज' के समान बढ़ रहे हैं। इन अंग्रेजी स्कूलों में भारतीय संस्कृति का श्राद्ध हो रहा है। राजर्षि टण्डन ने जिस उर्दू का विरोध किया था और कहा था कि इससे साम्प्रदायिकता भड़केगी और राष्ट्रीय एकता पर खतरा आ जायेगा, उसी उर्दू को उत्तर प्रदेश और बिहार के देशभक्त मुख्य मंत्रियों ने द्वितीय भाषा का दर्जा दिया। जो लोग ऐसे कुकृत्य का समर्थन कर रहे हैं, उन्हें 'हिन्दी दिवस' मनाने की भी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पात्रता नहीं है।

राष्ट्र भाषा किसी भी राष्ट्र की प्रथम रक्षापंक्ति है। इसे ध्वस्त कर दीजिये, राष्ट्र का ध्वंश निश्चित है। आज हमारे छात्रों के श्रम व समय का 50% अंग्रेजी सीखने में बर्बाद हो जाता है। कैसा मीठा जहर है। हम प्यार व आग्रह से पी रहे हैं। अंग्रेजी स्कूलों में दाखिले के लिए मोटी रकम घूस के रूप में दी जा रही है। रहना है भारत में और दक्षता पा रहे हैं अंग्रेजी में। 20 वर्षों की अंग्रेजी पढ़ाई के बाद काम मिला कारखाने में जहां मजदूरों से हिन्दी में या भारतीय भाषा में बात करनी है। आफिस की भाषा अलग है और मजदूरों से बात करने वाली भाषा अलग। ऐसा क्यों? गुलामी मनोवृत्ति! राजनैतिक दृष्टि से आजाद होने के बावजूद मानसिक दृष्टि से अभी हम आजाद नहीं हुए, प्रत्युत गुलामी का रंग दिनोंदिन और गाढ़ा होता जा रहा है। अंग्रेज गये, पर अंग्रेजियत छोड़ गये। लार्ड मैकाले ने जो सपना देखा था वह धीरे-धीरे साकार सा होता जा रहा है। उसका सपना था कि अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारत में ऐसी कौम पैदा होगी जो रूप-रंग में भारतीय होगी पर विचार एवं व्यवहार में अंग्रेज होगी।

भारत की गरीबी एवं दुर्गति में अन्यतम कारण विदेशी भाषा का शिक्षा का माध्यम होना है। जापान एवं चीन के छात्र मातृभाषा में शिक्षा पाते हैं। वे विषय की जानकारी हासिल करते हैं, जबकि हम भाषा और वर्तनी करते रहते हैं। और वर्तनी भी ऐसी कि जिसमें कोई विवेक नहीं है। Put पुट हो गया जबकि But बट रह गया। Neighbour के फालतू वर्ण विन्यास रहना गोइंठा में घी डालना है। एक दिन मैं अपने नाती को श्रुति लेख दे रहा था। मेरा तात्पर्य था, मैं एक मधु मक्खी देखता हूं। अर्थात् । see a bee लेकिन नाती ने रोमन लिपि के मात्र चार वर्ण लिख दिये- I c a b । मैं माथा पीटकर रह गया।

गीता में भगवान श्री कृष्ण कह रहे हैं- "बड़े जो काम करते हैं, छोटे उसी का अनुकरण करते हैं।" बात बिल्कुल सही है। सामने दिखाई पड़ रही है। पैसे वालों के लड़के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ रहे हैं। ममी, डेड बोल रहे हैं (ईश्वर न करे जीती जागती माता ममी बने और पिताश्री डेड हो जाएं)। बस, कम वित्तवाले अर्थात् निम्न मध्यम वर्गीय समाज टूट पड़ा अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में भर्ती कराने के लिए। दहेज प्रथा से भी ज्यादा घातक है यह अंग्रेजी स्कूलों की ओर भागने की प्रवृत्ति।

आजादी पाने के बाद घाना, नाइजीरिया, कीनिया, यूगाण्डा, तंजानिया, जाम्बिया, गैबिया आदि देशों ने अपने शासकों की ही भाषा को अपनी राष्ट्र भाषा बना ली जबकि इजराइल, थाइलैंड, सोमालिया, इथियोपिया ने अपने देश की भाषा को अपनाया। भारत, श्रीलंका एवं मलयेशिया ऐसा न कर सके क्योंकि इनके यहां अपने घर में ही विवाद उठ खड़ा हुआ। अपनी भाषा को अपनाने का सुफल उन देशों को मिल रहा है जिन्होंने अपनाया और जिन्होंने नहीं अपनाया उनके बच्चे भाषा द्वय की चक्की में पिस रहे हैं और पिसते रहेंगे तब तक जब तक दोनों में से कोई एक भाषा दूसरी को निगल नहीं जाती।

**वर्तमान संकट**

आज दूरदर्शन के माध्यम से भारतीय संस्कृति पर धुआंधार आक्रमण हो रहा है। इससे एक ओर हमारी संस्कृति चरमरा रही है, दूसरी ओर भाषा भी प्रभावित हो रही है। सिने स्टारों का जब इण्टरव्यू होने लगता है तब लगता है सभी स्टार इंग्लैंड से आये हैं। कोई हिन्दी बोल नहीं पाता है या अंग्रेजी बोलने में ही अपनी महिमा समझता है। इनके प्रदर्शनों से निराशा ही नहीं घृणा भी होती है। आज दूरदर्शन शिक्षा प्रसार व मनोरंजन का साधन न रहकर सहस्र मुख जहर फैला रहा है। यह सब मात्र इसलिए किया जा रहा है कि किसी अन्य राजनीतिक दल को फायदा न पहुंचे। देश भले रसातल को चला जाय।

अंग्रेजी भाषा एवं भोगपरक संस्कृति न केवल हिन्दी का अहित कर रही है, प्रत्युत सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के लिए कैंसर का कीड़ा बन चुकी है। इसके लिए जिम्मेदार है राजनेताओं का क्षुद्र स्वार्थ एवं देश-भक्ति का अभाव जो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में क्रमशः प्रतिक्षण प्रबलतर होता जा रहा है।

**कागजी बयान**

सरकारी आंकड़ों के अनुसार हिन्दी की दिनोंदिन तरक्की हो रही है। केन्द्रीय कार्यालयों में हिन्दी प्रकोष्ठ हैं जो अहिन्दी भाषियों को हिन्दी सिखा रहे हैं। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए खर्च हो रहे हैं और हिन्दी में जोर-शोर से काम चल रहा है लेकिन असलियत कुछ और ही है। ये सफेद हाथी अपनी हिफाजत अच्छी तरह कर लेते हैं।

लेकिन सारा दोष इनके मत्थे मढ़ देने से काम नहीं चलेगा। मुझे अच्छी तरह स्मरण है 1964 से पूर्व का भारत। मैं जिस विद्यालय में कार्यरत हूं, उसमें लगभग 10% छात्र दक्षिण भारतीय थे। अधिकांश छात्र हिन्दी में हिन्दी वालों से भी अच्छा अंक पाते थे। दक्षिण भारतीय अग्रदर्शी होते हैं। बच्चों से कहा करते थे— हिन्दी पढ़ो। इसके बिना काम चलने को नहीं। विद्यालय के पास ही मद्रासी मुहल्ला है। इनकी अच्छी खासी आबादी है लेकिन आज की स्थिति यह है कि एक भी मद्रासी लड़का अपने विद्यालय में नहीं पढ़ रहा है। सभी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में जा रहे हैं। यही आंकड़ा सही है, बाकी सब कल्पित। इनके बच्चे अतिरिक्त समय में अपने माता-पिता से हिन्दी बोलना सीख लेते हैं।

**विदेशों में हिन्दी**

स्वदेश की अपेक्षा विदेशों में हिन्दी का अच्छा खासा प्रचार हुआ है। ऐसा लगता है विदेशी जब हिन्दी में बोलने लगेंगे तभी हम हिन्दी का महत्व समझेंगे, आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज से हिन्दी पढ़कर आने में गौरव का अनुभव करेंगे।

मारिशस को तो लघु भारत कहा ही जाता है। यहां की आबादी का 52% हिन्दू है। यहां के निवासी आचार्य वासुदेव विष्णु दयाल भारत से उच्च शिक्षा प्राप्त कर 1939 ई० में मारिशस लौटे थे। आपने अपने अथक प्रयास से मारिशस में हिन्दी की उच्च शिक्षा की व्यवस्था की। आज भारत से हिन्दी विद्वानों का आना-जाना बढ़ गया है। यहां अगस्त,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1976 ई0 को द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन भी हो चुका है। इसका प्रमुख श्रेय तत्कालीन प्रधानमंत्री सर राम गुलाम को है। इसमें भाग लेने के लिए भारत से 500 प्रतिनिधि गये थे जिनमें पं. श्री नारायण चतुर्वेदी, आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि थे। यहां चतुर्थ विश्व हिन्दी सम्मेलन भी हो चुका है। जबकि तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन दिल्ली में हुआ था।

सन् 1965 तक अमेरिका के लोग यही जानते थे कि भारत की राष्ट्र-भाषा अंग्रेजी है। विवेकानन्द आदि विद्वानों ने अंग्रेजी में वक्तृता देकर इस धारणा को आधार दे दिया था लेकिन आज स्थिति यह है कि यहां लगभग सैकड़ों ऐसे विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय हैं जहां हिन्दी की पढ़ाई हो रही है। अमेरिका की कांग्रेस लाइब्रेरी तो ऐसी है जहां भारत में छपी सभी अच्छी पुस्तकें एवं पत्रिकाएं पहुंच जाती हैं और वहां से स्थानीय विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को भेजी जाती हैं।

फीजी में हिन्दी भाषियों की संख्या पर्याप्त है। वहां के संसद में भी हिन्दी में बोलने की छूट है।

भारत से बाहर कुछ तो ऐसे देश हैं जहां भारतीयों की संख्या अधिक है और वे स्वेच्छा से हिन्दी पढ़ रहे हैं। ऐसे देश हैं- मारिशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनीदाद, जमैका, मलयेशिया, कीनिया, थाईलैंड, बर्मा, नेपाल आदि।

जिन देशों के निवासी भारत के बारे में जानकारी के लिए या मैत्री स्थापन के लिए हिन्दी पढ़ रहे हैं, वे देश हैं- अमेरिका, कनाडा, रूस, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, हालैंड, इंग्लैंड, इटली, फ्रांस, जापान, जर्मनी आदि। आज विश्व के 100 से ऊपर विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन एवं शोध कार्य चल रहा है। जिन विदेशी हिन्दी विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं, वे हैं— कैम्ब्रिज के मैकग्रैगर, जर्मनी के लोठार लुत्से एवं श्रीमती मार्गेट गात्स्लाफ, रूस के वारान्निकोव, प्रो. चेलिशेव एवं साजानोवा, हालैंड के प्रो. शोकर, डेनमार्क के प्रो. थीसन, पोलैंड के ब्रिस्की, इटली के तुर्बियानी, फ्रांस की प्रो. निकोल बलवीर, हंगरी की प्रो. इबा अरादी, जापान के प्रो. मिजोकामी, प्रो. कोगा और प्रो. सुजुकी उल्लेखनीय हैं। फीजी में डॉ. विवेकानन्द शर्मा, श्री जे.एस. कँवल एवं बलराम वशिष्ठ जैसे मनीषी अपनी मौलिक रचनाओं द्वारा हिन्दी का कोश बढ़ा रहे हैं।

**हिन्दी माँग रही बलिदान**

सुन्दर सृष्टि बलिदान माँगती है। हिन्दी को नामधारी (Dejure) से कर्मधारी (Defacto) की स्थिति तक पहुंचाना है। इसके लिए हमें अपने क्षुद्र स्वार्थ का बलिदान करना होगा। आज हिन्दी वाले ही हिन्दी बोलने में संकोच का अनुभव करने लगे हैं, यही घातक स्थिति है। इंग्लैंड और जापान के निवासी अपने देश की महंगी चीजें खरीदते हैं और विदेशी सस्ती चीजें नहीं छूते। यही भाव जब हिन्दी वालों में आ जायेगा, तभी देश का कल्याण होगा और हिन्दी को अपना उचित स्थान मिल सकेगा। सम्पन्न वर्ग ऐसे स्कूल-कालेज खोलें जिनमें उच्च कोटि की शिक्षा की व्यवस्था हिन्दी माध्यम से हो। आज केवल साहस एवं दृढ़ निश्चय की अपेक्षा है। साधन-सम्पन्न वर्ग यदि अपनी चाल बदल दें तो हिन्दी एवं हिन्दुस्तान का हित संवरने में देर न लगेगी। राजनेता भी जरा अपनी अन्तरात्मा को टटोलें। वे जिस भाषा में वोट मांगते हैं, उसके लिए वे क्या कर रहे हैं। समग्र हिन्दी भाषी और हिन्दी समर्थक अहिन्दी भाषी भी संकीर्णताओं से ऊपर उठकर हिन्दी की शक्ति का एवं राष्ट्रीयता की भावना का सिंहनाद कर दें ताकि विश्व में चीनी व अंग्रेजी के बाद सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राष्ट्र-संघ में भी स्वीकृति मिल सके। अटल बिहारी वाजपेयी ने सर्वप्रथम एवं नरसिंह राव ने तदनन्तर अपने भाषणों से जो अनुगूंज राष्ट्रसंघ में पैदा की है उसे वैधानिक मान्यता दिलाकर स्थैर्य प्रदान करना है।

**82, रामकृष्णपुर लेन, हवड़ा-2**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org